ब्रह्मयोग=ब्रह्म में एकाग्र; **युक्तात्मा**=आत्मसंयुक्त; **सुखम्**=सुख का; **अक्षयम्**=अनन्त; **अश्नुते**=आस्वादन करता है।

अनुवाद

ऐसा मुक्त पुरुष इन्द्रियसुख अथवा बाह्य विषयों में अनासक्त होकर अपने स्वरूप में आनन्द अनुभव करता हुआ नित्य समाधिस्थ रहता है। इस प्रकार श्रीभगवान् में एकाग्र होकर स्वरूपप्राप्त पुरुष अनन्त सुख का आस्वादन करता है।।२१।।

तात्पर्य

कृष्णभावनाभावित महाभागवत श्रीयामुनाचार्य ने कहा है:

यदावधि मम चेतः कृष्णपदारविन्दे नव नव रसधामनुद्यतरन्तुमासीत्।
तदावधि बत नारीसंगमे स्मर्यमाने भवति मुखविकारः सुष्ठु निष्ठीवनं च।।

'जब से मैं श्रीकृष्ण की दिव्य प्रेममयी भक्ति में संलग्न होकर उनके नित्य नव-नव रस का आस्वादन करने लगा हूँ, तब से स्त्रीसंगम का विचार आते ही उस पर उद्वमन कर बैठता हूँ, यहाँ तक कि मेरे ओष्ठ भी अरुचि से संकुचित हो जाते हैं।'

ब्रह्मयोगी अथवा कृष्णभावनाभावित भक्त भगवद्भक्ति में इतना अधिक विभोर हो जाता है कि इन्द्रियसुख में उसकी लेशमात्र भी अभिरुचि नहीं रहती। जड़ प्रकृति की दृष्टि से काम परम सुख है। सम्पूर्ण विश्व इसी के मोह में क्रियाशील है; विषयी तो इसके बिना कोई कर्म ही नहीं कर सकता। किन्तु कृष्णभावनाभावित भक्त कामसुख का परिहार करके भी द्विगुणित उत्साह के साथ कार्य कर सकता है। यह भगवत्प्राप्ति की कसौटी है। भगवत्प्राप्ति तथा कामसुख एक साथ कभी नहीं हो सकते, दोनों का एक साथ होना सम्भव नहीं। जीवन्मुक्त कृष्णभावनाभावित किसी भी इन्द्रियसुख की ओर आकृष्ट नहीं होता।

22/7

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।२२।।

ये=जो; **हि**=निस्सन्देह; **संस्पर्शजाः**=इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले; **भोगाः**=भोग हैं; **दुःख**=दुःख के; **योनयः**=कारण; **एव**=ही (हैं); **ते**=वे; **आदि**=आदि; **अन्तवन्तः**=अन्त वाले; **कौन्तेय**=हे अर्जुन; **न**=कभी नहीं; **तेषु**=उनमें; **रमते**=रमण करते; **बुधः**=बुद्धिमान् (विवेकीजन)।

अनुवाद

हे अर्जुन! ये जो इन्द्रियों और विषयों से उत्पन्न होने वाले भोग हैं, वे केवल दुःख के कारण हैं और आदि-अन्त वाले हैं। इसलिए विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।।२२।।

तात्पर्य

प्राकृत इन्द्रियसुखों का उदय इन्द्रियों और विषयों के संघात से होता है। ये